गोस्वामी
तुलसीदास
और
आर्यसमाज
श्री बिहारीलाल शास्त्री

॥ ओ३म् ॥

गोस्वामी तुलसीदास
और
आर्यसमाज

लेखक :

श्री बिहारीलाल शास्त्री

काव्यतीर्थ

सम्पादक :

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

प्रकाशक :

आदित्य प्रकाश आर्य

अनीता आर्ष प्रकाशन

३३, जगन्नाथ विहार, पानीपत-१३२१०३

०१८०-२६४०६४८, २६४३७२६

प्रकाशक :

आदित्य प्रकाश आर्य
अनीता आर्ष प्रकाशन
३३, जगन्नाथ विहार,
पानीपत-१३२१०३
फोन : ०१८०-२६४०६४८, २६४३७२६

संस्करण : २००६

मूल्य : ८.०० रुपये

शब्द-संयोजक :
वैदिक प्रेस
कैलाशनगर, दिल्ली-३१

मुद्रक :
राधा प्रेस
गांधीनगर, दिल्ली-३१

॥ ओ३म् ॥

गोस्वामी तुलसीदास
और
आर्यसमाज

महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी कवि भी थे और भक्त भी, विद्वान् भी थे और सन्त भी । उन्होंने अपनी वाणी के विकास का आलम्बन श्री भगवान् रामचन्द्र को बनाया । रामरस में ही वे पगे रहे । उस समय के निराकारवादी सन्तों में वे साकारवादी सन्त हुए हैं । उन्होंने प्रबलता के साथ भगवान् राम के अवतारत्व और साकारवाद का समर्थन किया है । फिर उनकी कविताओं में आर्यसमाज से मिलती हुई बात ढूंढना और आर्यसमाज से उनको सम्बद्ध करना कैसी अनोखी बात है परन्तु गोस्वामी जी का आदर करने वालों को हम सूचित करते हैं कि हमारे हृदय में भी उनके प्रति अपार आदर है । मतभेद होते हुए भी हम इसलिये उनका मान करते हैं कि व्याकुल, निराश, मृतप्राय आर्यजाति को उन्होंने सान्त्वना दी, ढाढस बंधाया, जीवन दिया और एक आशाप्रद कार्यक्रम बताया ।

उस समय के यवन राज्य से उत्पीड़ित आर्यों को आतंकमय रावण राज्य का चित्र दिखाकर राम के समान किसी त्राता के आगमन की आशा बंधायी । निराशा के कारण नास्तिकता की ओर गिरती हुई जाति को आस्तिकता की ओर खींचा । भक्तिवाद का संबल दिया । धार्मिक मर्यादाओं की महिमा बतायी । पाखण्ड पन्थों से बचाकर श्रुति मार्ग में चलने की प्रेरणा दी ।

हम उनका आदर इसलिये भी करते हैं कि वे वेदों के भक्त थे और आर्यसमाज का वेद सर्वस्व है ।

श्री गोस्वामी जी ने वेदों की वन्दना की है–

बन्दौ चारों वेद, भव वारिधि वोहित सरिस ।
जिनहिं न सपनेहुं खेद, वर्णत रघुबर विमल यश ।

गोस्वामी जी के इष्टदेव भगवान् राम का राज्य आदर्श वैदिक राज्य था। उनके राज्य में प्रजा वेद-पथ पर चलती थी।

बरनास्त्रम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग॥

वेद पथ पर चलने से सारी प्रजा सुखी थी।

भगवान् राम के चूड़ाकर्म आदि सब संस्कार वैदिक हुए। नामकरण भी सब भाइयों के सार्थक रखे गये। देखो-

बिश्व भरन पोषन कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।

आर्यसमाज ने भी वैदिक संस्कारों को महत्व दिया है।

श्री गोस्वामी जी ने जड़ तीर्थों के स्थान पर चेतन तीर्थों की बड़ाई की है। जैसा कि श्री स्वामी दयानन्द ने चेतन तीर्थों को महत्व दिया है। देखो-

"वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना, पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता-पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ गुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं।" (सत्यार्थ प्रकाश)

गोस्वामी जी भी कहते हैं-

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥
मज्जन फल देखिय ततकाला, काक होंहिं पिक बकहु मराला।

अर्थ-जो मनुष्य इस सन्त समाज रूपी तीर्थराज का प्रभाव प्रसन्न मन से सुनते और समझते हैं और फिर अत्यन्त प्रेम पूर्वक इसमें गोते लगाते हैं। वे इस शरीर के रहते ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों फल पा जाते हैं।

जड़ तीर्थों के स्नान का फल तो मरने के बाद मिलना बताया है परन्तु साधु समाज में मज्जन का फल गोस्वामी जी कहते हैं, 'अछत तनु' इस शरीर के रहते ही मिलता है और इस में स्नान का फल तत्काल मिलता है और कौए कोयल बन जाते

हैं और बगुले हंस । अर्थात् बुरे से बुरे लोग श्रेष्ठ बन जाते हैं ।

अब उपर्युक्त सोरठे पर विचार करिये तो पता चलेगा कि श्री गोस्वामी जी आर्यसमाज के विषय में मानो भविष्यवाणी कर रहे हैं ।

साधु समाज, और आर्यसमाज पर्यायवाची शब्द हैं ।

महाकुल कुलीनार्य सभ्य सज्जन साधवः ।

अमर कोष के इस प्रमाण के अनुसार महाकुल, कुलीन, आर्य, सभ्य, सज्जन, साधु ये छैओं शब्द पर्यायवाची हैं ।

अतः साधुसमाज कहो या आर्यसमाज एक ही अर्थ हुआ और सोरठे के बोलने में भी कोई न्यूनता नहीं आयी । देखिये–

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग ।
लहहिं चारि फल अछत तनु, आर्यसमाज प्रयाग ।

गोस्वामी जी का वह तीर्थराज आर्यसमाज ही ठहरता है । क्योंकि आर्यसमाज की संगति से आर्यसमाज के उपदेशों में मज्जन करने से सहस्त्रों व्यक्तियों का मदिरापान छूट गया । अन्य नशे भी छूट गए । अनेकों दुराचार वेश्यागमन आदि छूट गये । सहस्त्रों वे व्यक्ति जिनको अछूत कहकर ठुकरा दिया था, आर्यसमाज के सत्संग से समाज में आदर योग्य बन गये । लाखों व्यक्ति अपने पुराने सनातन वैदिक धर्म में लौटकर आ गये और आर्य जाति में घुल मिल गये । यदि आर्यसमाज की बात को रामायण के पाठ करने वालों ने मान लिया होता तो पाकिस्तान नहीं बनता ।

आर्यसमाज के शुद्धि कार्य को सनातन धर्म के आचार्यों ने भी प्रयाग में हुए सन् १966 के विश्व हिन्दू धर्म सम्मेलन में स्वीकार करा लिया और श्री महाराज इन्दौर को शुद्ध किया तथा उनकी पत्नी को भी हिन्दू बना लिया । आर्यसमाज का शुद्धि आन्दोलन वस्तुतः भारत के उन मनुष्यों का जो कि विदेशी मतों को मानकर अपनी राष्ट्रीयता खो बैठे हैं "राष्ट्रीयकरण" है । रामायण के प्रेमियों और गोस्वामी जी के भक्तों को चाहिये कि आर्यसमाज से प्रेम करें । आर्यसमाज के सत्संगों में भाग लें ।

अब देखिये कि गोस्वामी जी ने शुद्धि करने के कैसे सरल और अचूक नुस्खे बताये हैं । पढ़ो–

श्वपच शवर खल यवन जड़ पामर कोल किरात ।
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात ॥

सनातन धर्म के पण्डितों ने इस पर ध्यान दिया होता तो पेशवा बाजीराव की सन्तान आज नवाब बाँदा का परिवार हिन्दू बना रहता भगवान् राम ने सबको मिलाया और उनके भक्तों ने अपनों को ही ठुकराया । लाखों शबर कोल किरात आज ईसाई बन रहे हैं, है किसी रामायणी को चिन्ता ? ध्यान देते हैं हिन्दुओं के ये धर्म गुरु इधर ?

केवल आर्यसमाज इस समर क्षेत्र में डटा हुआ है, लाखों को रोका है, सहस्त्रों को वापिस लिया है । राम-भक्तों को ईसाा की भेड़ बनने से आर्यसमाज लाखों कोल भील संथालों को बचा रहा है । रामभक्तो ! यह दोहा किस दिन काम आयेगा ? आगे देखिये–

पाई न केहि गति पतित पावन रामभज सुनु सठमना ।
गनिका अजामिल गीध व्याध गजादि खल तारेउ घना ।
आभीर यवन किरात खस श्वपचादि अति नघरूप जे ।
ले नाम वारेक होत पावन जासु राम नमामि ते ।

इस पद में तो एक वार राम नाम लेने पर यवन, खस, किरात पावन (शुद्ध) हो सकते हैं यह बताया गया है । रामायण प्रेमियो फिर देर क्यों है ? कमर बांधो और आर्यसमाज के साथ मिलकर खासी, नागा, किरात और यवनों (ईसाई मुसलमानों) को शुद्ध करके हिन्दू जाति में मिलाकर देश की अराष्ट्रीयता को दूर करके राष्ट्रीयता को पक्का बनाओ ।

आज हिन्दुओं को बरबाद करने के लिए कई पाखण्ड-मत चल पड़े हैं जैसे-ब्रह्मा कुमारी, आनन्द मार्ग, मुनि समाज आदि। श्री गोस्वामी जी ने ऐसे वेद विरुद्ध मतों का तिरस्कार उसी प्रकार किया है जैसे कि आर्यसमाज करता है । देखो–

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ ।
दम्भिन निज मत कल्प करि प्रकट कीन्ह बहु पंथ ॥

दम्भियों (ढोंगियों) के पंथों को कलिमल का परिणाम बताया है ऐसे मत सद्ग्रन्थ वेदों के अभाव में चलते हैं । अतः

वेद उपनिषद् आदि सुशास्त्रों का प्रचार होना चाहिये ।

वाम मार्गी अधोरी आदि पाखण्डियों का खण्डन भी रामायण में है । देखो–

निराधार जो श्रुति पथ त्यागी,
कलियुग सोइ जोगी सो विरागी ।

जाके नख अरू जटा विशाला, सोइ तापस प्रसिद्ध कालिकाला ।।

अशुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जो खाँहि ।
ते जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलियुग मांहि ।

ढोंगी साधु और पाखण्ड पंथियों की गोस्वामी जी ने कलियुगी समान बताया है ।

गोस्वामी जी ने बहुत कुछ तो ऐसा लिखा है कि मानव मात्र के लिए हितकारक है । जो कुछ लिखा है मर्यादा में रहते हुए लिखा है । वर्णाश्रम धर्म को पूरा महत्व दिया है । परन्तु उनका मतभेद आर्यसमाज से साकारवाद और अवतारवाद में है किन्तु उन्होंने यह भी मान लिया है कि ईश्वर का वर्णन वेदों में तो निराकार रूप में ही है । यथा–

आदि अन्त कोउ जासु न पावा, मति अनुमानि निगम अस गावा ।

अर्थ–जिस भगवान् का आदि अन्त किसी ने नहीं पाया। वेदों ने बुद्धि अनुमानपूर्वक ऐसा कहा है–

बिनु पग चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु कर्म करै विधि नाना ।
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु वाणी वक्ता बढ़ जोगी ।
तन बिनु परसि नयन बिनु देखा, ग्रहइ घ्राण बिनु नाक अशेषा ।
अस सब भांति अलौकिक करनी, महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ।।

अर्थ–वह (ब्रह्म) बिना ही पैरों के चलता है । बिना कानों के सुनता है । बिना ही हाथों के विविध काम करता है ।

बिना मुख के सब रस लेता है । बिना वाणी के बड़ा योग्य वक्ता है । बिना शरीर के स्पर्श करता है ''बिना नाक के सब गन्धों को ग्रहण करता है । इस प्रकार जिसकी सब कृति अद्‌भुत है जिसकी महिमा अवर्णनीय है ।

जेहि इमि गावत वेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान ।
सोइ दशरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान् ।।

जिसको इस प्रकार अर्थ ऊपर कहे प्रकार से निराकार रूप में वेद और विद्वान् गाते हैं और मुनि लोग जिसका ध्यान करते हैं वही दशरथ पुत्र भक्त के हित कोसल्पति राम बनते हैं।

उक्त चौपाइयों और दोहे में गोस्वामी जी ने स्वीकार कर लिया कि वेद तो ब्रह्म को निराकार ही निरूपण करता है । मुनि भी निराकार का ही ध्यान करते हैं । परन्तु गोस्वामी जी की अपनी धारणा है कि कोशलेश रघुनाथ जी वही निराकार ब्रह्म हैं। अब विचारिये कि वेद की बात मानी जाये या गोस्वामी जी की? प्रेम और भक्ति में, कविता के प्रवाह में गोस्वामी जी अपने वरणीय नेता को चाहे जितना महत्व दे दें यह भावना की बात है ।

परन्तु वस्तुतः तो वेद की बात मानी जायेगी । वेद उपनिषद् दर्शन शास्त्र ब्रह्म को कहीं भी साकार नहीं मानता ।

यह गोस्वामी जी भी स्वीकार कर चुके हैं । यदि भगवान् भगत का हित बिना साकार बने नहीं कर सकते तो 'कर बिनु कर्म करै विधि नाना'' वाली बात गलत ठहरी । यदि बिना शरीर के अखिल ब्रह्माण्ड को रच सकता है, इस अपार सृष्टि का प्रबन्ध कर रहा है तो भक्तों के हितार्थ शरीर धारण की क्या आवश्यकता है । रावण को बना तो दिया बिना शरीर धारण किये और मारने के लिए शरीर धारण करना पड़ा । है कोई तुक ? यही बात अवतार की है । अवतार का अर्थ है जो उतर कर आया है । उतर कर कौन आयेगा जो कहीं चढ़ा बैठा हो । यह कल्पना वही लोग कर सकते हैं जो ईश्वर को एक देशी मानते हैं जैसा कि ईसाई उसे आसमान पर मानते हैं । सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी मानने वालों को अवतारवाद मानना युक्तियुक्त नहीं रहता । गोस्वामी जी ईश्वर को बार-बार 'प्रभु व्यापक' भी कहते हैं और उतर कर आया हुआ भी मानते हैं यह युक्ति नहीं, पर कवियों को, प्रेमियों को सब भाया है ।

श्री गोस्वामी जी का परम मन्त्र 'राम' है उन्होंने बल के साथ इसी मन्त्र का जप बताया है, और कहा है-

मन्त्र महा मणि विषम व्याल के, मेटत कठिन कुअंक भाल के ।

परन्तु वेद, उपनिषद् और गीता में 'ओम्' नाम को ही

प्रधानता दी गयी है । राम नाम का कहीं वर्णन नहीं ।

योग दर्शन ने भी "तस्य वाचकः प्रणवः" कहकर ओम् नाम का ही जप बताया है ।

इस प्रकार सनातन आर्य पद्धति से गोस्वामी जी का मत मेल नहीं खाता ।

एक मतभेद मूर्ति पूजा पर भी है परन्तु रामचरित मानस से मूर्ति पूजा करना सिद्ध नहीं होता । भगवान् राम को लेने जब ऋषि विश्वामित्र जी महाराज दशरथ जी के दरबार में आये हैं तो उन्होंने यही शिकायत राक्षसों की की है ।

जहँ जप, जग्य, जोग मुनि करहीं, अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं ।

मुनि लोग जप, यज्ञ, योग करते थे मूर्ति पूजा का नाम नहीं। काकभुसुंड जी तो रात-दिन भक्ति में ही रहते थे । वे भी मूर्ति पूजा नहीं करते थे । देखो-

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई, जाप जग्य पाकर तर करई ।
आम छाँह कर मानस पूजा, तजि हरि भजन काजु नहिं दूजा ।
बट तर कह हरि कथा प्रसंगा, आवहिं सुनहिं अनेक विहंगा ।

यहाँ कहीं भी काक भुसुंडि मूर्ति पूजा नहीं करते ।

ऋषि विश्वामित्र के साथ जब भी रघुनाथ जी वनको गये तब सन्ध्या ही करते हैं मूर्ति पूजा का नाम नहीं ।

विगत दिवस गुरु आयसु पाई, सन्ध्या करन चलेउ दोउ भाई ।

प्रश्न-परन्तु रामायण में ही श्री सीता जी भवानी का मूर्ति पूजन करने जाती हैं और भगवान् राम समुद्र तट पर शिवलिंग स्थापित करके उसकी पूजा करते हैं ?

उत्तर-यहाँ विचारना यह है कि एक बार के अतिरिक्त फिर कहीं राम द्वारा शिवलिंग पूजन का नाम नहीं आता । बात वस्तुतः यह है कि श्री गोस्वामी जी वाराणसी में रहते थे । वहाँ शैवों का जोर था । गोस्वामी जी शैव और वैष्णवों में एकता कराना चाहते थे । इसलिए ये दो नयी कथाएँ लिखकर और शिव-विवाह लिखकर शैवों को सन्तुष्ट किया है । भवानी पूजन और शिवलिंग पूजन का वाल्मीकि रामायण जो कि आर्ष ग्रन्थ है उसमें नामो-निशान नहीं । ये दोनों कथाएँ गोस्वामी जी की अपनी

कल्पनाएँ हैं । वाल्मीकि रामायण में सीता के सन्ध्या करने का वर्णन है ।

सन्ध्या काल मनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।

परन्तु पूरी रामायण में श्री सीता जी के भवानी पूजन का नाम नहीं ।

रामेश्वर स्थापना की कोई चर्चा नहीं और श्रीमद्भागवत में तथा महाभारत में जहाँ अन्य तीर्थों का वर्णन है वहाँ रामेश्वर के शिवलिंग का नाम भी नहीं । हां वाल्मीकि रामायण के परिशिष्ट में रावण द्वारा शिवलिंग पूजा की चर्चा है इससे पता चलता है कि यह राक्षसी प्रथा है । सनातन धर्म के भी कई पण्डित राम द्वारा शिवलिंग पूजा को झूठ मानते हैं । अमरोहे के पं० लक्ष्मीनारायण जी तो रामेश्वर की कथा को बिलकुल गलत बताते हैं ।

कुछ भी सही । ये कथाएँ नयी हैं और वाल्मीकि रामायण के विरुद्ध हैं । पूरी रामायण में महाराज दशरथ, जनक, ऋषि, मुनि, किसी के द्वारा मूर्ति पूजा की गयी हो यह नहीं मिलेगा । यज्ञ करने के अनेक वर्णन हैं । आर्यसमाज ऋषि महर्षियों की प्रथा को मानता है । वह आर्य मार्ग ही सनातन धर्म है । बीच में चली नई बातों को आर्यसमाज नहीं मानता । मूर्तिपूजा, साकारवाद, अवतारवाद ऋषियों की मान्यताएँ नहीं हैं । इसलिए आर्यसमाज इन्हें नहीं मानता । गोस्वामी जी महाराज अकबर के राज्यकाल में हुए थे । अतः उन्होंने समयानुसार कुछ बातें लिख दीं ।

उनकी इन बातों पर ध्यान न देकर उन्होंने जो आदर्श रखे हैं उनको हृदयङ्गम करना चाहिए । वे आदर्श मानवमात्र के कल्याण के लिए हैं । पितृभक्ति, मातृभक्ति, भ्रातृप्रेम, पतिभक्ति, एक पत्नीव्रत आदि उनके सब ही उपदेश अनुकरणीय हैं, उनके द्वारा आर्य जाति का बड़ा हित साधन हुआ है, अतः वे नमस्य हैं, आदरणीय हैं ।

किन्तु रामायण भक्तों से एक निवेदन अवश्य करना है । वे बड़ी श्रद्धा से रामायण का अखण्ड पाठ करते कराते हैं तो उसके साथ गोस्वामी जी के वन्दनीय वेदों का भी पाठ किया करें। श्री भगवान् रामचन्द्र जी ने अथर्ववेद के संज्ञान सूक्त को

जीवन में उतारा, इसलिए वे अवतार कहलाये । आप भी उस सूक्त का पाठ करें और यजुर्वेद आदि का पाठ करें । वेद आर्य जाति का जीवन है । अतः ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के तीसरे नियम में आदेश दिया है–

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

आर्य जाति के सब ही लोग वेद पढ़ें चाहे सनातनी हों वा आर्यसमाजी ।

गोस्वामी तुलसीदास जी की राजनीति

राजनीति और अर्थ नीति से कोई ग्रन्थकार कठिनता से ही बचता है । ये दोनों विषय समाज के अंग–अंग में समाये रहते हैं। तो फिर गोस्वामी तुलसीदास जी के भी राजनीतिक विचार कुछ तो होने ही चाहियें ।

तो विचारना है कि गोस्वामी जी राजतन्त्रवादी थे या प्रजातन्त्र के पक्ष में ? साम्राज्यवादी थे व साम्यवादी ? व्यक्तिवादी थे या समाजवादी ? या कुछ भी न होकर अराजकतावादी थे ?

गोस्वामी जी रामभक्त थे । राम थे राजा । अतः वे राजतन्त्रवादी ही हुए । परन्तु कैसे राजतन्त्रवादी कि जिस राजा के तन्त्र में एक निर्धन अपढ़ धोबी की सम्मति पर भी ध्यान दिया जाये । राजा वह जो अपने को लोकतन्त्र के आधीन समझे।

वस्तुतः गोस्वामी जी के सामने राजपद्धति के ये वाद–विवाद नहीं थे । राजप्रणाली कोई भी हो परन्तु उसके सामने यह लक्ष्य हो–

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवस नरक अधिकारी ।

नरक से भय खाने वाला राजा धर्म विश्वासी अवश्य होगा। बस गोस्वामी जी की राजनीति है–धर्मतन्त्र राज का होना। महात्मा गांधी भी धर्महीन राजनीति को अच्छा नहीं समझते थे । गोस्वामी जी की राज–पद्धति में स्वराज्य शब्द न होकर 'सुराज' शब्द आया है–

अर्क जवास पात बिनु भयऊ । जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ ।

वर्षा ऋतु में मदार का वृक्ष और जवास पत्तों से विहीन हो गया है जैसे कि सुराज (अच्छा शासन) में खल, चोर, लुटेरे,

रिश्वतखोर, दुराचारियों के व्यवसाय नष्ट हो जाते हैं । अच्छा राज वही है जिसमें रिश्वतखोरी न हो, चोरबाजारी न हो, वंचकता न हो, दुर्बल पीड़न न हो, धूर्त उच्छृङ्खल उछलते-फिरते हैं, सज्जनों का जीवन संकट में पड़ रहा है । उस राज को धिक्कार है जिस राज में निरीह निर्दोष यात्रियों की रेलगाड़ी बम से उड़ा दी जाये और विध्वंसक अपराधी मौज मारते फिरें, उस राज के अधिकारियों को काला मुंह करके डूब मरना चाहिए । अपराधी रिश्वत के बल पर उछलते फिरें, और पीड़ित 'हा हा' करते रहें वह शासन निर्लज्ज है । देशभक्त साधुजन सताये गये और देशद्रोही दुष्ट राजकर्मचारियों को मारकर भी स्वच्छन्द घूमते रहें, वह शासन मुंह दिखाने योग्य नहीं । रावण के अनुचरों ने आतंक बिठाने के लिए मुनियों को मार डाला और उनका मांस भी खा गये । जैसे कि आज नागा, पाकिस्तानी (अब बंगलादेश) और निजी भारत के नागरिकों को व पुलिस वालों को जब तब मारते रहते हैं । चीनी असुरों ने भी कई भारतीय सिपाहियों को मार डाला । शासन की ओर से विरोध पत्र भेज दिये गये । यह काम बुरा है, हमें नापसन्द है, इतना कह कर सन्तोष कर लिया गया । परन्तु धर्म तन्त्र राजा श्री रघुनाथ जी ने जब उस मुनि हड्डियों के समूह को देखा और जिज्ञासा करी, जब ठीक घटना विदित हुई तो ।

निशिचर निकर मुनीजन खाये, सुनि रघुवीर नैन जल छाये ।

राम रोने लगे । अपने को धिक्कारा और तेज रूप में आकर बोले—

निशिचर हीन करों मही, भुज उठाय प्रण कीन्ह ॥
सकल मुनिन्ह के आश्रहि, जाय-जाय सुख दीन्ह ॥

और कुछ समय में ही दण्डकारण्य को राक्षसों से राहत दिला दिया । तपस्वी आश्वस्त हो ज्ञानोन्नति और तप साधना में लग गये ।

धर्म उस समय राजा को कर्तव्य-पालन के लिए प्रेरित कर रहा था । राजनीतिक धर्म अर्थात् कर्त्तव्य की अवहेलना नहीं हो सकती थी । डर था परलोक का, घट-घटवासी भगवान् का, अपयश का ।

अब देखिये रामराज में प्रजा की दशा—

रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गये सब शोका॥

राम के राजा होने पर तीनों लोक सुखी हुए। नभ, स्थल, जल, सर्वत्र ही सुख-शान्ति छा गई। देवलोक, नरलोक और नाग लोक भी आश्वस्त होकर आनन्दित हो गये।

बयरू न कर काहू सन कोई, राम प्रताप विषमता खोई।

कोई किसी से बैर नहीं करता, राम के प्रताप से विषमता, धनी-निर्धन में अभिमान और ईर्ष्या, बली, निर्बल में पीड़ित रहना, कल्पित उच्चता, नीचता, दासता और स्वामित्व सब भेद समाप्त हो गए। योग्यता के भेद होते हुए भी उदारता और कर्त्तव्य परायणता के कारण सब धनी, निर्धन, बली, निर्बल प्रेम से रहने लगे, ईर्ष्या, द्वेष मिट गया। उसमें सभी साम्यवाद, समाजवाद, सर्वोदयवाद के स्वर गूंज रहे हैं और वर्ग संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष और परिग्रह, असन्तोष पूरी शक्ति से बढ़ रहे हैं। कारण क्या है ? जनता में 'रामप्रताप' नहीं है। रामप्रताप और धर्म-भावना के बिना विषमता दूर तीन काल में नहीं हो सकती। भौतिकवाद शरीर पर प्रभाव रख सकता है। हृदय और मस्तिष्कों में स्वार्थ भर देना। रामप्रताप धर्म और ईश्वर-विश्वास मस्तिष्क और हृदयों को सरस बनाता है। उदारता की भावना भरता है। यही आगे स्पष्ट किया है—

वरनाश्रम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग॥
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग॥

क्योंकि सब लोग वेद-मार्ग पर चलते हैं। अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार काम कर रहे हैं। इसलिए भय, शोक नहीं है। सब सुखी हैं, और जब वर्णाश्रम का नाश करके 'श्रेणीहीन' समाज बनाने की घोषणा मन्त्री लोग करते फिरे, तो सब कर्त्तव्य चौपट होगा या नहीं। धर्महीन समाज बनाओगे तो भावना कहां से पैदा होगी ? और बिना भावना के भावनात्मक एकता कैसे उपजेगी। वेद ज्ञान-शून्य भौतिकवादी नास्तिक नेता स्वराज्य को सुराज नहीं बनने देंगे। आगे देखिये—

सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

सब मनुष्य आपस में प्रीति करते हैं । अपने-अपने धर्म पर चलते हैं । श्रुति-नीति वेद की नीति में लगे हुए हैं, वेद की नीति है योग्यतानुसार काम दिया जावे । अपने-अपने काम में सब रुचि रखें । काम के अनुसार धन मिले । उसी में सन्तोष से काम लें। अभिमान रहित हों । सबके साथ उदारता बर्तें। यह काम है धनिकों का । रामराज में कोई अल्पायु नहीं, रोगी नहीं, दीन नहीं । दुःखी नहीं, कोई मूर्ख नहीं । सब स्वस्थ, सुन्दर हैं ।

सब निर्भय धर्मरत पुनी, नर और नारि चतुर सब गुनी ।
सब गुनग्य पंडित सब ज्ञानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

कोई दम्भी (ढोंगी) नहीं है । सब स्वधर्म में रत हैं । सब पवित्र हैं । सब नर-नारी चतुर और गुनी हैं । सब गुनों को जानने वाले पण्डित ज्ञानी हैं । मूर्खता का कहीं नाम नहीं है । सब कृतज्ञ हैं । दूसरों के उपकार को मानने वाले हैं । कपट में समाया हुआ कोई नहीं । अब मिलाओ आजकल के राज्यों से । नेता दम्भरत और कपट सयाने हैं। ऐसे न हो तो नेता ही न रह सकें । कृतघ्नता तो राजनीति का अंग बन गयी है । चीन, इण्डोनेशिया ने भारत के साथ कैसी कृतघ्नता की । ब्रिटेन ने कैसा कपट-जाल रचा ।

आगे प्राकृत दशा का वर्णन है । समय पर वर्षा होती है वृक्ष सब फलते-फूलते हैं । खेती प्रबल उपज देती है । प्राकृत दशा तब ठीक ही रहती है, जब जनता धर्मनिष्ठ होगी । मनुष्य दम्भ तभी करेगा, जब भोग, भोग्य और भगवान् का विश्वास न हो ।

इस प्रकार गोस्वामी जी की राजनीति धर्मतन्त्र, सदाचार-तन्त्र और भावनामयी हैं । महात्मा गांधी की लिखी एक लघु पुस्तिका है 'सर्वोदय' नाम की । यह रस्किन के भावों का सार है । महात्मा गांधी जी ने उसमें यही निष्कर्ष निकाला है कि बिना सद्भावना से काम नहीं चलेगा । किसी वाद का भी राज हो, सद्भावना के बिना जनता का कल्याण केवल कानूनों द्वारा नहीं हो सकता । गोस्वामी जी की राजनीति का दूसरा भाग राजनीति दण्डतन्त्र भी है । सज्जन सद्भावना से मानेंगे और दुष्ट दण्ड से ही समझेंगे । अतः दण्ड की शक्ति हो । दण्ड देने योग्य बल भी राज पर होना चाहिए । राम स्वयं अपूर्व अद्वितीय शस्त्रज्ञ, शास्त्रज्ञ

हैं और उनकी चतुरंगिनी सेना सन्नद्ध है । इस प्रकार गोस्वामी जी की राजनीति यद्यपि राजतन्त्र है–

एक भूप रघुपति कोसला ।

कौशल प्रान्त के एक ही राजा श्रीरामचन्द्र जी हैं और पूरे आर्यावर्त्त दक्षिण लंका तक उनकी आज्ञा का डंका बजता है । परन्तु इस एकछत्र राजतन्त्र में भी प्रजा सुखी, सदाचारी एवं संयमी हैं ।

एक नारिव्रतरत सब नर झारी । ते मन वच क्रम पति हितकारी ।

प्रजा संयमी हो तो परिवार नियोजन का युद्ध क्यों मचे। एक ही राजा है, पर आदर्श राजा है, क्योंकि राजा भी धर्मशास्त्राधीन है । उसके निरीक्षक हैं ऋषि–मुनि, ब्राह्मण । गोस्वामी जी की राजनीति साम्यवाद, समाजवाद आदि के चक्कर में नहीं है। वह तो लक्ष को देख रही है । लक्ष है–प्रजा में सुख–सदाचार, आमोद–प्रमोद, सम्पत्ति और समाधि ।

हमें भी उसी लक्ष की ओर बढ़ना चाहिए परन्तु यह काम धर्म में श्रद्धा से ही होगा । धर्महीन राजनीति तो ऐसी ही है–

मानो सुन्दर नारी की नाक कटी ।

गोस्वामी तुलसीदास जी और यज्ञ

गोस्वामी जी यज्ञ के पूरे पक्ष में हैं । उनके इष्टदेव ही यज्ञ से प्रकट हुए । और यज्ञरक्षार्थ मुनि विश्वामित्र के साथ वन में जाते हैं । वनवास में ऋषियों के यज्ञों की, व्रतों की रक्षा करते हैं और यज्ञ विरोधी असुरों का दमन करते हैं ।

यज्ञ क्या है ? प्राणी मात्र के कल्याण के लिए केन्द्र में (यज्ञवेदी में) अपने द्रव्य का त्याग (आहुति) करना यज्ञ है और अपने ही मुंह में आहुति देना स्वार्थ है । असुर अपने ही मुख में आहुति देते हैं । अपने शरीर का पालन–पोषण, इन्द्रियों की तृप्ति यही असुरों का काम है । देव गण अन्यों का पालन–पोषण करते हैं । अपनी कमाई से जनहित करते हैं, यही यज्ञ है । यज्ञ कई प्रकार के हैं–

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ (गीता)

द्रव्य यज्ञ है । घृत से, सामग्री (सुगंधित, मीठा, पुष्टिकारक, रोगनाशक पदार्थ) से हवन करना, मांस आदि से नहीं । मांस से यज्ञ अनार्य (यहूदी) करते थे । आर्य भारतीय और आर्य ईरानी यज्ञों में मांस नहीं डालते थे न अब डालते हैं । यज्ञों में पशु बलि अनार्य प्रथा है । राक्षस यज्ञ-विरोधी थे जैसा कि–

जप, योग, विरागा तप मख भागा, श्रवन सुनइ दस सीसा ।
आपनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब धालइ खीसा ॥
अस भ्रष्ट अघारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना ।
तेहि बहु विधि त्रासइ देस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥

रावण राज्य का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि रावण कहीं जप, योग, विराग व यज्ञ याग की चर्चा सुनता था तो तुरन्त जाकर सब विध्वंस कर डालता था । उसका राज्य पूरा भौतिकवादी था । परलोक की बात रावण को पसन्द नहीं थी । उसकी समझ में वह सब व्यर्थ का पाखण्ड था । संसार में भ्रष्टाचार फैल गया था । धर्म शब्द कान से सुनाई नहीं देता था। पूरा धर्म निरपेक्ष (सैकुलर) राज्य था । जो वेद पुराण व शास्त्र की बात कहते थे वे देश से निकाल दिये जाते थे । साम्प्रदायिकों का काम ही क्या ?

उक्त चित्र तो श्री गोस्वामी जी ने रावण राज्य के लिए मुगल पठान राज्य के लिए खींचा है । परन्तु यह चित्र आजकल के धर्म निरपेक्ष कांग्रेसी राज्य से कुछ मेल खा जाता है ।

स्वात्म पोषक राक्षसों का यही लक्षण शतपथ ब्राह्मण काण्ड १ अध्याय १ ब्राह्मण ८ में–

ततोऽसुरा प्रतिमाने नैव कस्मिन्नु वयं जुह्वत श्चेरुः ।
अथ देवा अन्योऽन्यस्मिन्नेव जुह्वतश्चेरुः ॥

राक्षसों ने अभिमान से विचारा कि हम किसके लिये आहुति दें बस अपने अपने मुख में आहुति डालते हुए इन्द्रिय भोगों में फंसे फिरते रहे और पराजित हुए । देवताओं ने एक दूसरे के मुख में आहुति दी, एक दूसरे की सहायता की, सहयोग किया और विजयी हुए । यज्ञ क्या है–समाजवाद और सहकारिता का प्रतीक है । केवल हवन ही यज्ञ नहीं है । सभी देशहित के, जनकल्याण

के कार्य यज्ञ हैं । इस हवन यज्ञ से यह शिक्षा दी जाती है कि अपने ही मुख में आहुति न दो, अन्यों को भी दो यही भाव गीता में है ।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

जो यज्ञ से बचे हुए का अर्थात् जनहित (बलि वैश्व देव यज्ञ) से बचे हुए का भोग करते हैं वे निष्पाप रहते हैं और वे पापी लोग पाप ही खाते हैं जो केवल अपने स्वार्थ के (इन्द्रियों के) लिए पकाते हैं ।

केवल स्वशरीर और इन्द्रियों का ही पोषण आसुरीपन है। और अपनी कमाई से अन्यों को भी लाभ पहुंचाना देववृत्ति है । आर्यसमाज के नवें नियम में ऋषि दयानन्द यही कहते हैं–

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए ।"

आर्यसमाज ने इसी नियम को ध्यान में रखकर दलित वर्ग (हरिजनों) की सेवा, उस समय की जब कि न वोट का लालच था न नोट का । इस कार्य में अनेकों विपत्तियों का सामना करते हुए भी आर्यसमाज ने उनकी शिक्षा और उत्थान के लिए प्रयत्न किया और अनेकानेक शूद्रों को पण्डित (उपदेशक) बनाकर उन्हें उच्च स्थान दिलाया ।

प्रभु राम तो सबको समान करने में इतने उदार थे कि–

प्रभु तरु तर कपि डार पर तेउ किए आप समान ।
तुलसी कहऊ न राम से साहेब शील निधान ॥

श्रीराम वृक्ष के नीचे हैं और उनके सेवक वानर वृक्षों पर किलोल कर रहे हैं । अब रामायणी भाई विचार कर बतायें कि ऊंच-नीच के भेदभाव को दूर कर सब में एकता कराने वाला आर्यसमाज रामायण के समीप है या क़रपात्री शंकराचार्य या उनके चेले ?

गोस्वामी जी का अभीष्ट धर्म मार्ग

गोस्वामी जी ने राम राज्य की विशेषता यही बताई है कि सब प्रजा वेद मार्ग पर चलती थी–"निरत वेद पथ लोग ।" और भी अनेक स्थानों पर वेद की महिमा बखानी है । वेद के अतिरिक्त अन्य सब मार्गों को गोस्वामी जी कुपथ समझते हैं–

चलहिं कुपंथ वेद मग छाड़े ।
कपट कलेवर कलि मल भाड़े ॥

जो वेद मार्ग को छोड़कर अन्य पन्थों को अपनाते हैं, कुपथों में (बुरे मार्गों पर) चल रहे हैं । ऐसे लोग शरीरधारी कपटी हैं, छली हैं, दम्भी हैं और कलि युग के मैल के पात्र हैं । निहायत गन्दे हैं । अब स्वामी दयानन्द के विचारों को देखिये–

१. "सच तो यह है कि जिन्होंने वेदों से विरोध किया और करेंगे वे अवश्य अविद्या रूपी अन्धकार में पड़कर सुख के बदले दारुण दुःख जितना ही पावेंगे उतना ही न्यून है । इसलिए मनुष्य मात्र को वेदानुकूल चलना समुचित है ।" (सत्यार्थप्रकाश)

ऋषि दयानन्द की सम्मति में वेद विरोधी अविद्या में फंस कर दुःख उठाते हैं । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आप तीर्थों में हिन्दू जनता की परेशानी और उनके मेलों में मुसलमानों के द्वारा की गयी दुर्दशा देखने में मिलती है । गण्डे, ताबीज, कण्ठी, जिन, भूत, प्रेत, मुल्ले, पण्डे, मुसलमान और हिन्दू दोनों को दुःख में डाल रहे हैं । हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अन्धविश्वास में फंसे हैं । ईसाई अब अधिकतर पोप के चक्कर से बच गए हैं । यह योरोप और अमेरिका में विज्ञान जो वेदानुकूल है उसके प्रचार की कृपा है परन्तु अन्धविश्वास में तो वे भी फंसे हैं ।

२. "विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना, पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषण आदि कुलक्षण से वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म है ।" (सत्यार्थप्रकाश) ।

वेद विद्या के प्रचार न होने को स्वामी दयानन्द कुकर्म बताते हैं । वेद विद्या का प्रचार न होने से देश पराधीन हो गया।

और देखिए–

३. वेद ईश्वरोक्त है । इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिए और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है ? तो यही उत्तर देना चाहिए कि हमारा मत वेद अर्थात् जो कुछ वेदों में है हम उसको मानते हैं । (सत्यार्थप्रकाश)

और भी–

४. ''अच्छा तो वेद मार्ग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो सदा गोते खाते रहोगे । (सत्यार्थप्रकाश)

जैसे श्री रघुनाथ जी की प्रजा श्रुति पथ पर चलकर सुखी थी वैसे ही श्री स्वामी दयानन्द जी जनता को श्रुति मार्ग पर चलाना चाहते थे । स्वामी जी और गोस्वामी जी दोनों ही वेद मार्ग पर जोर दे रहे हैं परन्तु खेद है कि हमारे रामायणी लोग वेद को दूर करके रामायण के ही अखण्ड पाठ पर ही लगे हुए हैं । वेद को पढ़ने–पढ़ाने का नाम नहीं लेते । आर्यसमाजी वेद पढ़ते हैं उसका प्रचार भी करते हैं, रामायण भक्तों को चाहिए कि अपने सत्संगों में वेद मन्त्र ही पढ़ा करें । यज्ञ वेद मन्त्रों से कराया करें। रामायण से प्रथम वेद मन्त्रों से मंगलाचरण किया करें । इस विषय में वे आर्यसमाज से पूरी सहायता ले सकते हैं । वेद सम्बन्धी पुस्तकें भी वे समाज से ले सकते हैं । वेद तो दोनों का ही मान्य ग्रन्थ है ।

वेदों की शिक्षा को श्री भगवान् राम ने अपने जीवन में उतारा । भगवती सीता की पतिभक्ति परायणता वेद उपदेश का उदाहरण है । भरत का त्यागमय जीवन, श्री लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जीवन वेदों का उपदेश मानने का ही फल है । श्री बजरंगबली हनुमान् का ब्रह्मचर्य वेद की शिक्षा का जीवित उदाहरण है । जब श्री हनुमान् जी रावण के महल में भगवती जनक दुलारी की खोज कर रहे थे तब उन्होंने रावण की स्त्रियों को सोता हुआ देखा । वे स्त्रियां बेहोश पड़ी थीं उनको नग्न अवस्था में देखा तब भी महावीर जी के मन में कोई विकार नहीं हुआ । वाल्मीकि रामायण में लिखा है–

हनुमान् जी विचार रहे हैं मैंने रावण के महल में विश्वास पूर्वक

सोयी हुई स्त्रियों को देखा । पर स्त्रियों को इस प्रकार देखना पाप है परन्तु तत्काल कहते हैं कि इससे मेरे मन में कोई विकार नहीं हुआ अतः कोई दोष भी नहीं लगा । कितना दृढ़ ब्रह्मचर्य है महान् योगी हनुमान् का । यह है जीवन, वेदों की शिक्षा का जीवन । अतः रामायण की रक्षा चाहते हो तो वेदों को पढ़ो पढ़ाओ ।

गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार

गोस्वामी जी रामानन्दी सम्प्रदाय के वैष्णव थे और वैष्णवों का कोई भी सम्प्रदाय अभेदवादी नहीं । अतः गोस्वामी जी भी जीव ब्रह्म सिद्धान्त की एकता के सिद्धान्त को नहीं मानते थे । अभेदवादी में ऐसी उपासना भावना कहां जैसी कि गोस्वामी जी में है । देखिए उनका पद विनय पत्रिका में–

टेक–ब्रह्म तू हौं जीव, तू ठाकुर हौं चेरो ।
तात मात गुरू सखा, तू सब विधि हितू मेरो ॥
तू दयालु दीनहौं, तू राजि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो ।
मो समान आरत नहीं आरति हर तोसो ॥
मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै ।
तुलसी कृपालु दीन चरण शरण आवै ॥

यहां गोस्वामी जी अपने को जीव मान कर ईश्वर ब्रह्म को तात पिता माता गुरु सखा अनेक नातों से स्मरण कर रहे हैं । यहां अपने को ब्रह्म का अंश नहीं बता रहे हैं । आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द जी भी ऐसा विचार प्रकट करते हैं–"जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं जैसे आकाश से मूर्तिमान द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा । इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य–व्यापक, उपास्य–उपासक, पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूं ।"

५वां समुल्लास, सत्यार्थप्रकाश

वेद ने भी ईश्वर को बन्धु, पिता, माता आदि कहा है ।

१. स नो बन्धुर्जनिता स विधाता ।

२. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।

उपनिषद् भी कहती है—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

परन्तु आगे चलकर अद्वैतवादी को प्रसन्न करने के लिए गोस्वामी जी ने यह भी लिख दिया—

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखण्डा ।
दीप शिखा सोइ परम प्रचण्डा ॥

वह ब्रह्म मैं हूं ऐसी वृति वैष्णव तो धारण कर नहीं सकता वह तो अद्वैतवादी शैवों की बात गोस्वामी जी कह रहे हैं—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशी ।
सो माया वश भयऊ गोसांई, बधेऊ कीट मरकट की नाईं ॥

यह सब विचार अद्वैतवादियों के रख दिए हैं । "सोऽहम्" के स्थान में "दासोऽहम्" ही कहेगा और सर्वत्र यही भावना गोस्वामी जी की पायी जाती है । आर्यसमाज भी अद्वैतवाद को नहीं मानता । ईश्वर "सच्चिदानन्द", जीव सत् चित् और प्रकृति केवल 'सत्' यह तीन पदार्थ आर्यसमाज अनादि मानता है । अद्वैतवादी प्रकृति को नहीं मानते । माया को भी कल्पित मानते हैं । यह सब विज्ञानवादी बौद्धों की नकल की गयी है गीता सांख्य की तरह प्रकृति और पुरुष (ब्रह्म) दो पदार्थ अनादि बता रही है ।

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि । विकारांश्च गुणांश्चैवविद्धि प्रकृति संभवान् ॥

अर्थात् प्रकृति और पुरुष (ब्रह्म) यह दोनों पदार्थ अनादि हैं। विकार और गुण यह प्रकृति से पैदा होते हैं । गीता से उलझन दूर कर दी यदि अद्वैतवादियों के अनुसार यह सब संसार ब्रह्म है तो विकार (बुराइयाँ) और सब जीवों में स्वभाव आदि का भेद क्यों है ? गीता ने कहा कि प्रकृति और उसके गुण सत्व, रज, तम के कारण विकार है । वेद में स्पष्ट कहा गया कि तीन सत्य हैं ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया । समानं वृक्षं परिषश्चे जाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य नश्नन्नन्यो अभिचाक शीति ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया—दो मित्र हैं (ज्ञान वाले चेतन पक्षी) समान वृक्षं परिषश्व जाते—समान रूप से वृक्ष पर हैं प्रकृति के वृक्ष

(संसार पर) तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्त्य चश्नन् उनमें से एक पक्षी जीव उसके फलों को खाता है अर्थात् कर्म करता है फल भोगता है। अन्यः अभिचाकशीति—दूसरा पक्षी ईश्वर फल नहीं खाता केवल देखता रहता है। संसार का प्रबन्धक मात्र है। फल भोगता नहीं। क्योंकि वह कोई काम इच्छा से या अपने लिए नहीं करता जीव ब्रह्म को एक बताना आधी नास्तिकता है। गोस्वामी जी ईश्वर को एक स्थानवासी नहीं मानते किन्तु सर्वव्यापी मानते हैं।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम से प्रकट होहिं मैं जाना।
देसकाल दिसि विदि सब मांही, कहंहु सौ कहां जहां प्रभु नाहीं॥
एक अनीह अरूप अनामा अज, सच्चिदानन्द भगवाना।
व्यापक विश्व रूप भगवाना, तेहि धरि देह चरित कर नाना॥

ईश्वर को निराकार सर्वव्यापक मानते हुए भी उसे देह धारण कराते हैं और कहते हैं—

जो गुण रहित सगुण सोइ कैसे,
जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।

निर्गुण सर्वव्यापक देह धारण करके अनेक चरित्र करता है। तो जब वह सब देहों में लोकान्तर में व्यापक है तो बिना देह धारण किए ही रावण आदि को मार सकता है। सारा ब्रह्माण्ड ही उसकी लीला है फिर मानव लीला दिखाने की क्या आवश्यकता? निर्गुण के सगुण होने का उदाहरण गोस्वामी जी देते हैं कि जैसे जल बरफ और ओला बन जाता है इसी प्रकार निराकार ब्रह्म साकार बन जाता है। गोस्वामी जी यह नहीं बता सकते जल बर्फ ओले प्राकृतिक पदार्थ हैं। उनके रूप में परिवर्तन होता ही रहता है और हर रूप में वह सगुण ही रहते हैं न निर्गुण बनते हैं, न निर्गुण होते हैं। ब्रह्म निराकार चेतन है और निर्विकार है, सर्वव्यापक है। उस निर्विकार के रूप में विकार कैसे आ सकता है। निर्गुण में गुण कैसे आ सकते हैं। सर्वव्यापक सिकुड़ कर एक देही कैसे हो जाता है। निर्गुण सगुण कैसे हो जाता है। जल सिकुड़ कर बर्फ बन सकता है। वरन् एक सर्वव्यापक ब्रह्म कैसे सिकुड़ सकता है। वह अपने रूप में परिवर्तन करे तो विकारवान् हो जाएगा। सर्वशक्तिमान् होते हुए भी वह गलत काम नहीं करता क्योंकि वह सत्य स्वरूप है। फिर साकार रूप तो माया का भी

होता है जैसा कि गोस्वामी जी खुद ही कहते हैं–

गो गोचर जहँ लगि मन जाई ।
सो सब माया जानहु भाई ॥

जो पदार्थ इन्द्रियगोचर है (इन्द्रिय से जानने वाला है) वह सब माया है । भक्त भगवान् को देखना चाहते थे तो भगवान् को देख नहीं सके माया ही देखने को मिली । वास्तव में भगवान् इन्द्रियों का विषय नहीं । उसे आंखों से नहीं देखा जा सकता उसके आनन्द का अनुभव आत्मा में ही किया जा सकता है । वह देखने की वस्तु नहीं, अनुभव की वस्तु है । जैसे खट्टा, मीठा रस देखने की वस्तु नहीं चखने की वस्तु है । शब्द देखने और चखने की वस्तु नहीं सुनने की वस्तु है । परन्तु गोस्वामी जी दार्शनिक तो थे नहीं। वे भावुक कवि थे, भक्त थे उनके हृदय में देशभावना भी थी अतः उनकी सब कल्पनाएं तर्क से परे थीं। कल्पना को तर्क में स्थान नहीं । और कवि का संसार कल्पना लोक का ही अधिक होता है । रामायण के आदेश मानव जीवन के लिए बड़े उपयोगी हैं । यदि हमारे रामायण भक्त केवल पाठ तक ही सीमित न रहकर उसके उपदेशों पर भी ध्यान देने का प्रयत्न करें तो ठीक लाभ हो सकता है । साथ ही हिन्दू जाति में जीवन शक्ति लाने के लिए और विधर्मियों के फन्दे काटने के लिए प्रत्येक हिन्दू को सत्यार्थप्रकाश अवश्य पढ़ना चाहिए और गोस्वामी जी द्वारा वन्दनीय वेदों की महिमा जानने के लिए ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका नामक ग्रन्थ अवश्य पढ़ना चाहिए । इन दोनों पुस्तकों को भी आर्यसमाज से लिया जा सकता है । हर रामायणी को गायत्री मन्त्र तथा सन्ध्या भी प्रतिदिन करनी चाहिए। यह पुस्तक भी आर्यसमाज में मिल जायेगी । रामायणी भाइयों को आर्यसमाज के सत्संगों में जाते रहना चाहिए ।

गोस्वामी तुलसीदास के दृष्टिकोण का प्रचारक सच्चे मायने में आर्यसमाज ही है ।

गोस्वामी जी की राष्ट्रीयता

मर्यादा पुरुषोत्तम राम के राजसिंहासन पर बैठते ही सभी प्रजाजन, सभासद, मन्त्रियों को बुलाकर घोषणा करते हैं और चाहते हैं कि उनकी बातों को कार्यरूप में परिणत करें जिस से वास्तविक

रामराज्य की स्थापना हो ।

बड़े भाग मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा ।
साधन-धाम मोक्षकर द्वारा, पाहि न जेहि परलोक संवारा ॥
सो सहस्त्र दुख पावई, शिर धुनि धुनि पछताय ।
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाय ॥
यहि तनुकर फल विषय न भाई, स्वर्गहु स्वल्प अन्त दुखदाई ।
नरतनु पाय विषय मन देही, पलटि सुधा ते शठ विष लेही ॥
ताहि कबहुँ भल कहै न कोई, गुंजा गहै परसमणि खोई ॥

घोषणा के अनुसार सारी प्रजा ने उसको पूर्णतया पालन करते हुए दैनिक जीवन के व्यवहार में लाते हुए पूर्ण मानव बन गए और सच्ची राष्ट्रीयता सारी प्रजा में आ गयी उससे परिणाम यह हुआ कि उनके राज्य में कोई दुखी नहीं, कोई दीन नहीं, कोई अविद्वान् नहीं, कोई अल्प आयु नहीं, सब सुन्दर और बलिष्ठ होकर वास्तविक रूप से वेद की मनुर्भव अर्थात् मनुष्य पन को प्राप्त हुए । सही अर्थों में मनुष्य विवेकी, कर्मठ, मननशील, निष्ठावान् बने, बिना उसके जीवन की सफलता असम्भव है ।

यजुर्वेद अध्याय २२ मन्त्र २२ में राष्ट्रीयता का दिग्दर्शन है—

ब्रह्मन ! सुराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेजधारी ।
क्षत्रिय महारथी हों, अरिदल विनाशकारी ॥
होवे दुधारु गौएं, पशु अश्व आशुवाही ।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें ।
इच्छानुसार वर्षे, परजन्य ताप धोवें ॥
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी ।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

रामराज्य की प्रजा में ये सारे गुण थे । ऐसी महान् राष्ट्रीयता और मनुष्यता जब और जहां भी होगी सारी सम्पन्नताएँ उनके चरणों में नतमस्तक होंगी । प्रभु कृपा करें कि ऐसी राष्ट्रीयता भारत के जन-जन में व्यापे और वास्तविक रामराज्य की स्थापना हो ।

॥ इति शुभम् ॥